International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.42
IJSSER 2025; 7(2): 309-312
www.socialsciencejournals.net
Received: 22-06-2025
Accepted: 25-07-2025

डॉ. योगेंद्र सिंह
असि. प्रो. इतिहास,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान पीजी कॉलेज, रोहालकी किशनपुर, हरिद्वार–उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. योगेंद्र सिंह
असि. प्रो. इतिहास,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान पीजी कॉलेज, रोहालकी किशनपुर, हरिद्वार–उत्तराखंड, भारत

प्राचीन भारत में उद्योग एवं व्यवसाय

योगेंद्र सिंह

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26649845.2025.v7.i2d.361

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में देशवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि और पशुपालन था, परंतु धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार के उद्योग एवं व्यवसायों को प्रारंभ किया गया। कालांतर में इनका विकास अत्यंत तीव्र गति के साथ हुआ जिससे विभिन्न व्यवसायों के नाम पर जातियों का नामकरण भी हुआ। धीरे–धीरे इन व्यवयाओं से जुड़े लोगों ने अपने संगठन स्थापित कर लिए, जिससे उनका और भी अधिक तेजी के साथ हुआ। इन सबके फलस्वरूप भारत में बनी वस्तुओं की मांग दुनियाभर में बड़ी तेजी के साथ बढ़ने लगी और देश आर्थिक रूप से अत्यंत समृद्ध बन गया।

सिंधु सभ्यता कालीन

सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों के उत्खनन से प्राप्त मूर्तियों की वेशभूषा एवं तकलियों से पता चलता है इस काल में उस समय सूत कातना और कपड़ा बुनना एक मुख्य उद्योग था। कालीबंगा तथा लोथल से प्राप्त एक मृदभाण्ड़ तथा कुछ मुद्राओं पर सूती कपड़े की छाप मिली है।[1] कताई, बुनाई और कढ़ाई के अतिरिक्त वस्त्रों को रंगे जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। मोहनजोदड़ों एवं लोथल से वस्त्रों को रंगने के लिए बनाया गया हौज भी मिला है।[2] उत्खनन से प्राप्त मूर्तियों, खिलौनों तथा मृदभाण्डों से स्पष्ट होता है कि सिंधु सभ्यता में कुंभकारों का व्यवसाय काफी उन्नत दशा में था। उत्खनन में बड़ी संख्या में कटोरे, कटोरियां, कलश, थालियां एवं सुराहियां आदि प्राप्त हुई हैं। नगरों के निर्माण में ईंटों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि इस काल में ईंट निर्माण एक महत्वपूर्ण उद्योग था।

इस काल में धातु उद्योग भी उन्नति पर था और यहां के लोग सोना, चांदी, तांबा, कांसा तथा टीन धातुओं का उपयोग करते थे। आभूषणों के निर्माण में सिंधुवासी अत्यंत दक्ष थे। हडप्पा तथा मोहनजोदडो से सोने, चांदी तथा तांबे के बने अनेक आभूषण मिले हैं जिन्हें भूमि में गाड़ा गया था।[3] धातु के साथ ही इस सभ्यता के लोग शंख, सीप, घोंघा तथा हाथीदांत से अनेक वस्तुओं का निर्माण करते थे। शंख काठियावाड़ के समुद्रतट से मंगाया जाता था और इसका प्रयोग मनके, चूड़ियां, बाजूबंद, तश्तरी एवं चम्मच आदि बनाने में किया जाता था।[4] लोथल एंव चन्हुदड़ों से मनके बनाने वाले कारीगरों की कार्यशालाओं के साक्ष्य मिले हैं।[5] इस काल में मद्रा निर्माण भी एक महत्वपूर्ण उद्योग था।

ऋगवैदिक कालीन

ऋगवैदिक काल में आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि और पशुपालन था परंतु इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधे भी संचालित करते थे। ऋगवेद में तक्ष्मन अर्थात बढ़ई, हिरण्यकार अर्थात सुनार, कर्मार अर्थात धातु शिल्पी, चर्मकार अर्थात मोची, तंतुवाय अर्थात जुलाहा तथा कुंभकार आदि अनेक व्यवसाय करने वालों का उल्लेख मिलता है। इस काल में वस्त्र उद्योग की दशा बहुत उन्नत थी। ऋगवेद में कपड़े के लिए वस्त्र[6] वास[7] और वसन[8] आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋगवेद में करघा और तसर अर्थात करघी का भी उल्लेख मिलता है।[9] कपड़ा बुनने वाले को वासोवाय कहा जाता था।[10] वस्त्र बुनने वाली स्त्री को वयित्री कहते थे।[11] वस्त्रों के ऊपर कढ़ाई करने वाली स्त्री पेशस्कारी कहलाती थी।

गांधार तथा परूष्नी के ऊनी वस्त्र प्रसिद्ध और उत्तम होने के कारण दूर तक बिकने के लिए जाते थे। ऋगवेद में अयस शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। अयस का प्रयोग बहुत अधिक होता था तथा इस धातु से कवच, शिरस्त्राण, बाण तथा अन्य अनेक प्रकार औजार बनाए जाते थे।[12] बढ़ई लकड़ी से अनेक प्रकार की वस्तुओं जैसे रथों एंव गाड़ियों बनाते थे और विभिन्न प्रकार की नक्काशी करते थे। ऋगवेद मे रथ बनाने वाले बढ़ईयों के लिए रथकार[13] शब्द का प्रयोग हुआ है।

ऋगवेद में सौ पतवारों वाले पोतों का भी वर्णन मिलता है।[14] चमड़े का काम करने वाले चर्मन्न कहलाते थे।[15] ये लोग पशु चर्म से थैले और आच्छादन आदि बनाते थे।[16] इसके अतिरिक्त ये कोड़े, लगाम तथा प्रत्यंचा आदि भी बनाते थे।[17]

उत्तरवैदिक कालीन

इस काल में ऋगवैदिक काल की अपेक्षा उद्योग–धंधों एवं व्यवसायों के क्षेत्र अधिक उन्नति हुई। लेकिन इस काल में हिरण्य अर्थात सोना, रजत अर्थात चांदी, श्याम अयस, लोहित अयस, सीसा और त्रपु अर्थात टीन आदि धातुओं का प्रयोग किया जाने लगा था।[18] धातुकार के लिए सामान्य शब्द कर्मार था।[19] अथर्ववेद में तांबे के लिए लोहित अयस और लौहे के लिए श्याम अयस का प्रयोग किया गया है।[20] वस्त्र बुनने का कार्य अधिकांश स्त्रियां करती थी जिन्हें वायित्री कहा जाता था। वस्त्रों में उष्णीष, नीवी, अंगरखा तथा चादर आदि का उल्लेख मिलता है। इस काल में वस्त्रों की रंगाई भी की जाती थी। कपड़े रंगने का कार्य करने वाली स्त्री को रजयित्री कहा जाता था।[21]

शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर वराह के चमड़े से उपानह अर्थात जूते बनाने का उल्लेख मिलता है।[22] वाजसनेयी तथा तैतरीय सहिंता में भिषक का उल्लेख मिलता है।[23] इस काल के अन्य व्यवसायियों में रथकार का प्रमुख स्थान था। इस काल में रथकार का इतना महत्व था कि उसे रत्निन की सूची में शामिल किया गया था, जिसके घर पर राज्याभिषेक के समय राजा स्वयं जाता था।[24] उसे श्रौत यज्ञ संपन्न करने तक की आज्ञा प्रदान की गई थी। यज्ञ के साथ साथ वह अपना उपनयन संस्कार भी करा सकता था और इसके द्वारा वह द्विज की श्रेणी में आ सकता था।

वेदोत्तर कालीन

इस काल में अनेक नये व्यवसायों का जन्म हुआ और प्रमुख व्यवसाय श्रेणियों में संगिठत हो गए। छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व के बीच का काल औद्योगिक क्षेत्र में क्रांति का काल माना जाता है। पाणिनी ने अनेक प्रकार के उद्योगों एवं व्यवसायों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार मिट्टी के बर्तन को कौलालक और बनाने वाले को कुलाल कहा जाता था।[25] तक्षा अर्थात बढ़ई दो प्रकार के होते थे, जो अपनी दुकान या घर पर बैठकर काम करते थे उन्हें कोटतक्षा तथा जो बुलाए जाने पर किसी के घर पर काम करने जाते थे कौटतक्षा कहे जाते थे। धनुष बनाने वाले धनुष्कार कहलाते थे।[26] धनुष प्रायः ताड़ की लकड़ी के बनते थे।[27] रजक विभिन्न रंगों से कपड़े रंगता था।[28] रजत, कांसा, तथा टीन आदि विभिन्न धातुओं का उल्लेख भी पाणिनी ने किया है।[29] मणि अर्थात मणिका के लिए लोहित शब्द का प्रयोग होता था।[30] सस्यक अर्थात पन्ना तथा वैदूर्य मणि आदि रत्नों का उल्लेख भी पाणिनी के द्वारा किया गया है। इस काल में ऊनी वस्त्र उद्योग अत्याधिक विकसित हो चुका था।

इस काल में गंध व्यवसाय भी उन्नत दशा में था। अष्टाध्यायी में किसर तथा शलालु नामक सुगंधित द्रव्यों की दुकानों का उल्लेख मिलता है।[31] युभंगकरण से भी अनेक सुगंधित द्रव्य बनाये जाते थे जिनका प्रयोग अधिकतर स्त्रियां करती थी।[32] इसके अतिरिक्त संगीत, नर्तक, गायन तथा वादन आदि ललित कलाओं को भी शिल्प में सम्मिलित किया है और उनके प्रथक वर्गों का उल्लेख किया है।[33] महाकाव्यों के अध्ययन से भी तत्कालीन समय की उन्नत आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त होता है। वस्त्र व्यवसाय के समान धातु और शिल्प उद्योग भी उन्नत दशा में था। धातुओं में सोना, टीन, सीसा, और लोहे का उल्लेख महाभारत में अनेक स्थानों पर मिलता है। बौद्ध ग्रंथों से भी इस समय के व्यवसायों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। हेरोडोटस के अनुसार भारत के लोग जंगली पेड़ों पर उगने वाली ऊन बने वस्त्र पहनते थे।[34] विनयपिटक के अनुसार शिवि देश सूती कपड़े, गांधार ऊनी कपड़े, वाराणसी रेशमी कपड़ों तथा काशी मूल्यवान वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। टीशियस के अनुसार उसे ईरान के अखामनी सम्राट ने भारतीय इस्पात की बनी दो तलवारें भेंट की थी।[35]

मौर्य कालीन

इस काल में अनेक प्रकार के उद्योग एवं व्यवसाय अत्यंत विकसित स्थिति में थे। मेगस्थनीज ने अनेक प्रकार के शिल्पियों तथा उद्योगों का वर्णन किया है। उनके अनुसार भारत के लोग विभिन्न प्रकार के व्यवसायों द्वारा जीवन यापन करते थे और शिल्पी कृषकों को औजार बनाकर देते थे।[36] इस काल के उद्योगों के विषय में जो जानकारी हमें अर्थशास्त्र से प्राप्त होती है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। खानों का प्रधान अधिकारी अकाराध्यक्ष होता था। अकाराध्याक्ष के अधीन सबसे महत्वपूर्ण अमात्य लोहाध्यक्ष था जो लोहा, तांबा, सीसा और त्रपु आदि धातुओं के कारखाने का संचालन करता था।[37] आभूषणों और अलंकरणों के विभागाध्यक्ष को सुवर्णाध्यक्ष तथा सिक्कों की टकसाल के अध्यक्ष को लक्षणाध्यक्ष कहा जाता था। सिक्कों के परीक्षक को रूपदर्शक नामक अधिकारी नियुक्त होता था। खनन और धातु उद्योग पर राज्य का एकाधिकार था। इस काल में वस्त्र उद्योग भी पर्याप्त विकसित दशा में था। टीशियस के अनुसार भारत में निर्मित चमकीले वस्त्र ईरान में बहुत पसंद किए जाते थे।[38]

निर्याकस के अनुसार भारतीय पेड़ों पर उगने वाला मलमल सर्वाधिक सफेद तथा चमकीला होता था।[39] एरियन ने भी इसकी पुष्टि की है।[40] मेगस्थनीज के वर्णन से भी इस काल में वस्त्र उद्योग की उन्नत दशा का पता चलता है। उसके अनुसार भारतीय बारीकी और सजावट के प्रेमी होते हैं। उनके वस्त्रों पर सोने का काम किया जाता है। उसने विभिन्न प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख करते हुए लकड़हारों के बढ़ईयों का वर्णन किया है जो वृक्ष काटने और काष्ठ से विविध प्रकार का सामान बनाने में संलग्न रहते थे।[41] इस काल में चर्म उद्योग भी उन्नत दशा में था। अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार के चमड़ों का उल्लेख मिलता है। निर्याकस के अनुसार भारतीय बड़े मोटे तलवे के कामदार तथा चित्रित जूते पहनते हैं जिसके कारण उनकी ऊंचाई बहुत अधिक हो जाती है।[42] इस काल में बर्तन बनाने का उद्योग भी बहुत अच्छी स्थिति में था। ग्रीक लेखकों के वर्णन से पता चलता है कि उस समय भारत में पोत निर्माण कला बहुत विकसित थी।[43]

मौर्योत्तर कालीन

इस काल में मौर्य काल के विपरीत उद्योग एवं व्यवसायों पर राज्य का नियंत्रण समाप्त हो गया, जिससे उद्योग तथा व्यवसायों का वृहत विकास हुआ। इस काल में धातु उद्योग निरंतर प्रगति की ओर बढ़ा। मिलिंदपन्हों में सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा, पीतल तथा टीन आदि के कारीगरों का उल्लेख मिलता है।[44] धातुओं को साफ करने, गलाने, ढालने, जोड़ने तथा धातु मिश्रण की तकनीक में बड़ी उन्नति हुई।[45] पेरीप्लस ने भारत के लौह उद्योग की बहुत प्रशंसा करते हुए कहा कि भारत की लोहे या फौलाद की वस्तुएं बहुत अच्छी एवं उत्कृष्ट कोटि की होती थी और इतनी प्रचुरता में बनाई जाती थी कि उनका निर्यात पूर्वी अफ्रीका तक के देशों को किया जाता था।[46] पेरीप्लस के अनुसार तांबा भडौंच के बंदरगाह से विदेशों को भेजा जाता था।[47] प्लिनी ने भारतीय शीशे की बनी वस्तुओं की बहुत प्रशंसा की है। तक्षशिला से प्राप्त शीशे की वस्तुओं में चूड़िया, शीशियां फ्लास्क, टायल एवं मनके आदि मुख्य हैं। शीशे की जो वस्तुएं यहां से मिली है उनके रंग और उनके कम आपेक्षित घनत्व से स्पष्ट होता है कि भारतीयों ने शीशे की तकनीक के रसायनिक पक्ष को अच्छी तरह जान लिया था।[48]

पेरीप्लस के अनुसार उस समय भारत में मुक्ता उत्पादन के चार प्रसिद्ध केंद्र थे। जो ताम्रपर्णि नदी के मुहाने पर कौरके, मनार की खाड़ी, जलड़मरूमध्य और बंगाल। जूनागढ़ अभिलेख में शक शासक रूद्रदामन का राजकोष हीरा, वैदूर्य एवं रत्न आदि से भरपूर बताया गया है।[49] ईसा की पहली शताब्दी में रोमन साम्राज्य के वैभव संपन्न नागरिकों में मोतियों और मणियों के आभूषण धारण करने का फैशन बहुत बढ़ गया था जिसके परिणामस्वरूप वहां भारत आने वाले मोतियों और रत्नों की मांग निरंतर बढ़ने लगी। इसलिए भारत में इसके उत्पादन और निर्यात पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा, जिसके कारण यहां रत्न उद्योग का बहुत अधिक विकास हुआ।[50] पेरीप्लस ने सूती कपड़ों के अनेक प्रसिद्ध केंद्रों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार सबसे बढ़िया मलमल गांगेय कहलती थी क्योंकि यह गंगा की निचली घाटी में बंगाल प्रांत में तैयार की जाती थी। यह मलमल इतनी महीन, बढ़िया और हल्की होती थी कि इसे आबेरंबा अर्थात बहता पानी और बाफ्तहवा अर्थात बुनी हुई हवा आदि नाम दिए गए थे।[51]

गुप्तकालीन

इस काल में औद्योगिक क्षेत्र में अत्यंत उन्नति होने से इसे आर्थिक दृष्टि से वैभव और संपन्नता का काल कहा गया। इस काल में वस्त्र उद्योग अपनी उन्नति के शिखर पर था। रघुवंश से पता चलता है तंतुवाय वस्त्र बनाने में इतने निपुण थे कि उनके बनाए वस्त्र फूंक मात्र से उड़ जाते थे।[52] यद्यपि संपूर्ण भारत वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध था लेकिन इसके प्रसिद्ध केंद्र गुजरात, बंगाल और तमिल थे। विशेष रूप से प्रसिद्ध स्थलों में रेशमी वस्त्रों के लिए बनारस तथा उच्चकोटि के सूती वस्त्रों के लिए मथुरा प्रसिद्ध केंद्र थे। इस काल में धातु उद्योग का वैज्ञानिक आधार पर विकास हो चुका था। इस काल के साक्ष्यों में खानों[53] तथा खानों में काम करने वाले श्रमिकों अर्थात आकारिक[54] के उल्लेख मिलते हैं। महरौली लौह स्तंभ[55] उनकी धातुकला का जीता जागता उदाहरण है। उसकी प्रमुख विशेषता यह है कि हजारों वर्षों की बरसात, धूप और हवा के बावजूद आजतक जंग नहीं लगा है।

इस काल में मणियों का भी बहुत प्रयोग किया जता था। बृहत्सहिंता में 22 प्रकार की मणियों का उल्लेख मिलता है जो देश के विभिन्न भागों से प्राप्त हेाती थी। इनमें हीरा, नीलम, पन्ना, माणिक, वैदूर्य जंबुमणि, बिल्लौर, चंद्रमणि, नीलमणि, दुधिया पुखराज, मोती, प्रवाल, गोमेद तथा शंख आदि मुख्य रूप से सम्मिलित हैं।[56] देवगढ़ का दशावतार मंदिर, तिगवा स्थित विष्णु मंदिर, भूमरा स्थित शिव मंदिर, कानपुर का भीतर गांव का मंदिर तथा नचना कुठार स्थित पार्वती मंदिर इनकी वास्तुकला के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अजंता, एलोरा तथा बाघ की गुफाएं भी उस काल की महान देन हैं। कालीदास ने बेंत से बनी कुर्सी अर्थात वेत्रासन[57] का उल्लेख किया है। जो अतिथियों के स्वागत के लिए रखी जाती थी। बेंत और बांस से बनी टोकरियों का भी वर्णन मिलता है।

पूर्वमध्य कालीन

इस काल के साहित्यिक ग्रंथों तथा विदेशी यात्रियों के विवरणों से इस काल के उद्योग धंधों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त होती है। इस समय वस्त्र उद्योग अपनी उन्नति के शिखर पर था। हर्षचरित के अनुसार राजकुमारी राज्यश्री के विवाह के अवसर पर जिन वस्त्रों का प्रदर्शन किया गया था उनमें क्षौम अर्थात लिलन, बदर अर्थात सूती, दुकूल अर्थात छाल का रेशम, लालातंतु अर्थात महीन रेशम, अंकुश अर्थात मलमल और नेत्र अर्थात धारीदार रेशम आदि सम्मिलित थे। इनमें से कुछ वस्त्रों को सांप की केंचुली के समान हल्का तथा मुलायम कहा गया है। कुछ वस्त्रों की कोमलता की उदमी कदली वृक्ष के भीतरी अंश से दी गई है।[58] हवेनसांग ने भारतीय वस्त्रों को रेशमी, सूती, क्षौम, ऊन तथा बकरी के बालों में विभक्त किया है।[59] इस काल के साहित्य में वस्त्र निर्माण के कुछ प्रमुख केंद्रों का भी उल्लेख मिलता है। शांतिदेव के ग्रंथ शिक्षा समुच्चय के एक अनुच्छेद से पता चलता है कि उस समय बनारस यानि वाराणसी रेशमी वस्त्र निर्माण का प्रमुख केंद्र था।[60]

हवेनसांग के अनुसार मथुरा सूती कपड़े का प्रसिद्ध केंद्र था। उसी के अनुसार कश्मीर में लिनन बनायी जाती थी। सोमेश्वर के अनुसार इस काल में मुल्तान, अणहिलपाटन, बंगाल, प्रतिष्ठान, नागपत्तन, चोलदेश, तोंडमंडल, चिकाकोल तथा कलिंग वस्त्र उद्योग के प्रसिद्ध केंद्र थे।[61] अरब यात्री सुलेमान के अनुसार बंगाल की मलमल इतनी महीन होती थी कि अंगूठी के बीच से पूरा थान निकल सकता था।[62] इब्नखुर्दब्जा भी बंगाल के बारीक मलमल से बहुत प्रभावित हुआ था।[63] मार्कोपोलो के अनुसार बंगाल, गुजरात, तेलंगाना तथा मालाबार सूती वस्त्रों के निर्माण के प्रमुख केंद्र थे।[64] उसके अनुसार मालाबार में बहुत बढ़िया किस्म की बुकरम बनायी जाती थी।[65] चाऊ जू कुआ के अनुसार सूती वस्त्र गुजरात तथा बंगाल में बनते थे और यहीं से निर्यात किए जाते थे। उसी के अनुसार चोल राज्य भी अपने सूती तथा रंगीन वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।

इस काल में धातु उद्योग में भी अत्यंत उन्नति हुई। लोहा, तांबा, पीतल, टीन, चांदी और सोना आदि सभी धातुओं का प्रयोग बहुतायत में होता था। हवेनसांग के अनुसार इस देश में सोना और चांदी बहुत अधिक मात्रा में खोदकर निकाले जाते हैं। उसके अनुसार उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश के उद्यान औरा दरेल इलाकों से तथा व्यास और सतलज के बीच के टक्क प्रदेश में तांबा और लोहा भी मिलता है। इसके अतिरिक्त तांबा नेपाल और कुलूत अर्थात कुल्लू से भी मिलता है।[66] इब्नहौकल के अनुसार सिंध में देवल तलवार निर्माण प्रमुख केंद्र था।[67] चाऊ जु कुआ के अनुसार बंगाल अपनी दोधारी तलवार के लिए प्रसिद्ध था।[68] हवेनसांग ने नालंदा में तांबे से बनी बुद्ध की 80 फीट ऊंची प्रतिमा और एक पीतल के 100 फीट के मंदिर को देखा था।[69] अलबरूनी ने भी तांबे की मूर्ति का उल्लेख किया है। इस काल में जवाहारात एवं मणियों का व्यवसाय भी उन्नति पर था। हवेनसांग के अनुसार द्रविड़ प्रदेशों से विभिन्न प्रकार के कीमती पत्थर तथा स्फटिक आदि प्राप्त होते थे।[70] मार्कोपोलो के अनुसार हीरे वारंगल में प्रचुर मात्रा में पाए जाते थे।[71] अलइश्तकरी ने लिखा है कि मुल्तान के सूर्य मंदिर पास हाथीदांत का काम करने वालों की एक बस्ती थी। चाऊ जू कुआ के अनुसार चोल राज्य हाथी दांत के उद्योग के लिए प्रसिद्ध केंद्र था।[72] इस काल में वास्तु एवं शिल्प का व्यवसाय भी उन्नति की चरम सीमा पर पंहुच गया था। जहाज एवं नावें निर्माण का व्यवसाय भी विकसित दशा में था। इसके अतिरिक्त अभिलेखों और साहित्यिक ग्रंथों में अन्य व्यवसाय करने वालों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में उद्योग और व्यापार के स्तर को किसी भी दृष्टी से हीन मानना तर्कसंगीत प्रतीत नहीं होता है। समय–समय पर भारत विदेशी यात्री, राजदूत और व्यापारी और इतिहासकारों के लेखों में इसके अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं कि प्राचीन भारत में उच्च स्तरीय उद्योग और व्यापार संचालित होता था। प्राचीन भारत का उद्योग एवं व्यापार आतंरिक और बाह्य दोनों तरह का अपने समय में विश्व में सबसे उन्नत और समृद्ध था। जहां भारत उच्च गुणवत्ता वाले वस्त्रों, मसालों और अन्य विलासिता की वस्तुओं का प्रमुख निर्यातक था, जबकि विश्व के अन्य क्षेत्र औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए थे। भारत का रेशम मार्ग और समुद्री व्यापार विश्व को चीन, रोम और मध्यपूर्व जैसे क्षेत्रों से जोड़ते थे, लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान इसका औद्योगिकीकरण विरोधी प्रभाव

पड़ा, जिससे भारत एक औद्योगिक शक्ति से कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता में परिवर्तित हो गया।

संदर्भ ग्रंथ

1. आल्चिन, द बर्थ ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन, पृ. 21
2. एस.आर.राव, लोथल, पृ. 78
3. अर्नेस्ट मैके, इंडस सिविलेजाइशेन, पृ. 123
4. थपलियाल एवं शुक्ल, सिंधु सभ्यता, अध्याय 10
5. आल्चिन, पूर्वोक्त, पृ. 294
6. ऋगवेद, 1/112/3
7. वही, 1/34/1
8. वही, 6/94/7
9. वही, 10/71/9
10. वही, 10/26/6
11. वही, 2/3/6
12. वही, 1/25/3
13. वही, 1/61/9
14. वही, 10/143/5
15. वही, 8/5/38
16. वही, 8/106/10
17. वही, 1/12/16
18. वाजसनेयी सहिंता, 18/3
19. वैदिक इंडेक्स भाग 1, पृ. 140
20. अथर्ववेद, 11/3/1
21. यजुर्वेद, 30/12
22. शतपथ ब्राह्मण, 5/4/3/19
23. वाजसनेयी सहिंता, 30/10
24. मैत्रायणी सहिंता, 2/6/5
25. अष्टाध्यायी, 4/3/118
26. वही, 3/2/21
27. वही, 4/3/152
28. वही, 3/1/145
29. महाभाष्य, 3/1/123
30. वही, 5/4/30
31. अष्टाध्यायी, 4/5/53
32. वही, 4/4/53
33. वही, 3/9/146
34. हेरोडोटस, 3/106
35. वार्मिंग्टन, कॉमर्स बिटवीन इंडिया एंड रोमन एंपायर, पृ. 257–58
36. आर.सी.मजूमदार, क्लासिकल अकाउंट्स, पृ. 237–38
37. अर्थशास्त्र, 2/12
38. नीलकांत शास्त्री, कंप्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 73
39. कैंब्रिज हिस्ट्री, 1, पृ. 412
40. इंडिका, 16/1
41. योगेंद्र मिश्र, मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, पृ. 49
42. टार.सी.मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 220
43. फ्रैगमेंटस, 36, 46, पृ. 85
44. ए.एन.बोस, सोशल एंड रूरल इकॉनामी ऑफ द नार्दन इंडिया, पृ. 238
45. जी.एल.आद्या, अर्ली इंडियन इकॉनामिक्स, पृ. 58
46. हरिदत्त वेदालंकार, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 526
47. पेरीप्लस, पृ. 36
48. जी.आद्या. पूर्वोक्त, पृ. 80
49. डी.सी.सरकार, सलेक्ट इंसक्रिप्संस बियरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, 1, पृ. 173
50. हरिदत्त वेदालंकार, पूर्वोक्त, पृ. 524
51. वही, पृ. 525
52. रघुवंश, 16/43
53. वही, 3/18
54. अमरकोष, 9/94
55. जे.फ्लीट, कार्पस इंसक्रिप्संस इंडिकेरम, भाग 3, पृ. 139
56. बृहत्संहिता, 80–81
57. कुमारसंभव, 6/53
58. हर्षचरित, उच्छवास 4
59. वाटर्स, 1/148
60. शिक्षासमुच्चय, पृ. 208
61. मानसोल्लास, 3/6/10/7–20
62. इलियट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ऑन हिस्टोरियंस, 1, पृ. 361
63. वही, पृ. 14
64. जर्नल ऑफ द बिहार एंड उडीसा रिसर्च सोसायटी, 1917, पृ. 208
65. मार्कोपोलो, 2/389
66. जीवनी, 1/178, 225, 239
67. एच.आई.ई. 1, पृ. 37
68. बी.पी.मजूमदार, सोशियो इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया, पृ. 199
69. वाटर्स, 1/171
70. वही, 1/178
71. मार्कोपोलो, 2/360
72. स्ट्रगल फॉर एंपायर, पृ. 517